बाँस

बाँस पक गए हैं
उन्हें छप्पर पर बिछा दो
खपरे छा दो।

एक टोकनी बुन लो
अपने मन की चीज़ें भरो
कचरा भरकर फेंको।
एक काँवर बना लो
कन्धों पर रखो और चल दो
पुल बनाकर पार हो जाओ।

इससे पहले कि
बाँस बेसुरे हो जाएँ
और जल मरें
उनकी गाँठों को काट दो
छोटी-छोटी बाँसुरियाँ बना लो
पूरे जंगल में सुर भरो।

शब्द

शब्द
बेस्वाद होते हैं
उन पर
मक्खी तक नहीं बैठती
गुड़ शब्द पर भी नहीं
उड़ जाती है
गुड़ की खोज में

धुव्र शुक्ल

हमारी नानी जी

टी.वी. की शौकीन हमारी नानी जी
खाती हैं नमकीन हमारी नानी जी
नाना जी परतंत्र दिखाई देते हैं
रहती हैं स्वाधीन हमारी नानी जी
तेंदुलकर छक्का मारे चाहे चौका
पूरी तिक्के तीन हमारी नानी जी
बिन साबुन पानी जाड़े के मौसम में
होती ड्राई क्लीन हमारी नानी जी
गलत बात सुनकर गुस्से में हो जातीं
तेज़ धूप में टीन हमारी नानी जी
चढ़ा पेट पर मिठ्ठू तबला बजा रहा
ताक धिनाधिन धीन हमारी नानी जी
जितना नया-नया नाती है गोदी में
उतनी हैं प्राचीन हमारी नानी जी
गली मुहल्ले नुक्कड़ की अफवाहों पर
करतीं नहीं यकीन हमारी नानीजी

यश मालवीय

बब्बू-झब्बू

घोड़ा लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
इस घोड़े में नहीं चढेंगे
ये घोड़ा है लद्दू जी!
घोड़ा अच्छा मिला नहीं,
बब्बू बोले गिला नहीं।

आलू लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
आलू-वालू नहीं चलेगा,
हम खाएँगे कद्दू जी
कद्दू अच्छा मिला नहीं
बब्बू बोले गिला नहीं।

चिड़िया लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
ये तो बस चीं-चीं करती है
हमें चाहिए पट्टू जी।
पट्टू अच्छा मिला नहीं
बब्बू बोले गिला नहीं

टॉफी लाए बब्बू जी
आ के बोले झब्बू जी
चीज़ यही भाती है हमको
क्या करना है लड्डू जी
झूम रहे हैं बब्बू जी
नाच रहे है झब्बू जी

हरीश निगम

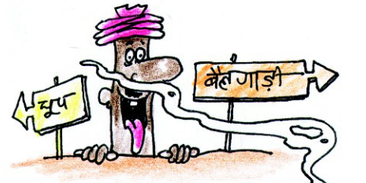

दो गाँव

हम दो अलग-अलग गाँव हैं
बैलगाड़ी और धूप नाम के

पर यूँ ही कभी
हमारी फसलों की खुशबू
इकट्ठी रसोई में चली आती है
हम दो पास-पास के गाँव हैं
बैलगाड़ी और धूप नाम के

कभी धूप बैलगाड़ी में बैठती है
कभी बैलगाड़ी धूप में।

तेजी ग्रोवर

फिर क्यों करता काँव काँव

कव्वे तेरे कितने पाँव?
भैया मेरे दो ही पाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

कव्वे तेरे कितने गाँव?
भैया नीम मेरा इक गाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

तुझे सुहाती किसकी छाँव?
बैठा हूँ जिस आम की छाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

कव्वे चलना है गुड़गाँव?
नहीं, मुझे जाना चटगाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

प्रभात

डाकिए से कहो

डाकिए से कहो
रोज़ कम से कम
एक चिट्ठी
ज़रूर डाला करे

उसकी साइकिल की आवाज़
दूर से ही सुनाई दे जाती है
धीरे-धीरे पास आती है
लगता है अब खुला गेट
अब सरके दरवाज़े के नीचे से
पीले या नीले कागज़

सम्भावनाओं से भरा हुआ
तो अब
बस डाकिया ही है

मेरे किसी दोस्त से कहो
किसी दूसरे शहर में चला जाए
ताकि उसको चिट्ठी लिख सकूँ मैं
या मैं ही
छोड़ दूँ यह शहर
एक साथ ढेरों चिट्ठियों का
जुगाड़ हो जाए

"डाकिए से कहो" कविता का एक अंश

राजीव सभरवाल

बच्चा-बादल

बिछुड़ गया
बादल का बच्चा
नभ में घूम रहा था,
ऊँचे-ऊँचे
शिखर बर्फ के
उनको चूम रहा था।

सोचा, "नीचे उतर किसी के
घर में घुस जाऊँ,
बच्चे मुझ जैसे भी होंगे
उनसे ही मिल आऊँ।"

धीरे-धीरे
उतरा नीचे
खिड़की पर मँडराया,
खुली देख खिड़की
चुपके से भीतर घुस आया।

घुसते ही अन्दर हर्षित जी
बुरी तरह से भीगे,
लगे छींकने ज़ोर-ज़ोर से
आँखें मींचे-मींचे

घबराकर बादल का बच्चा
घर से बाहर भागा,
ढूँढ रहे थे मम्मी-पापा
बोले, "ऊपर आ जा।"

बात नहीं हो पाई कुछ भी
वह उदास था ऐसा,
छूट गया ज्यों
पीछे कोई
बिल्कुल उसके जैसा।

रमेशचंद्र पंत